"वैश्वीकरण, साहित्य और सांस्कृतिक मुद्दे एवं चुनौतियाँ"

डॉ. विकास शर्मा
सहायक प्रवक्ता
हिन्दी विभाग
शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

वैश्वीकरण के प्रथम चरण की शुरूआत 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के साथ हुई मानी जा सकती है। जिसकी परिणति उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद के तौर पर हुई थी। इसके दूसरे चरण का आरम्भ 1990 के आसपास सोवियत संघ के पतन और वैश्विक आर्थिक उदारीकरण के साथ माना जाता है। इन दोनों चरणों में वैश्वीकरण का प्रमुख उद्देश्य शक्तिशाली देशों के आर्थिक हितों को साधना रहा है। प्रथम चरण में भूमंडलीकरण ने साम्राज्यावादी देशों के आर्थिक हितों को तो पूरा किया, साथ ही उपनिवेशवादी देशों का जमकर शोषण करने के बावजूद शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान के प्रसार से इन देशों में राजनीतिक, सामाजिक, वैचारिक चेतना के साथ कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी किया था। परन्तु इस दूसरे चरण में भूमंडलीकरण ने आर्थिक हितों की पूर्ति के साथ-साथ इन देशों की राजनीतिक, वैचारिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विचारधारा पर करारा प्रहार किया है। आज के वैश्विक वातावरण में उत्तर आधुनिकतावाद के समय में इतिहास का अंत, ईश्वर का अंत, समाज-साहित्य के अंत की घोषणा के स्वर सुनाई पड़ने लगे। यह भूमंडलीकरण या वैश्विक उपभोक्ता संस्कृति की स्थापना में लगा हुआ है।

वर्तमान में समाज की सभी शक्तियों को बाजार संचालित कर रहा है। वैश्विक समाज में विभिन्न संस्कृतियों की दूरियाँ कम हुई है और एक ही संस्कृति गढ़ने की कोशिश की जा रही है। वह संस्कृति है पाश्चात्य संस्कृति। जिसकी अगुवाई अमेरिका कर रहा है। इसका उद्देश्य स्थानीय संस्कृतियों को नष्ट कर अपनी संस्कृति को थोपकर समान संस्कृति को स्थापित करना है जो बाजार द्वारा संचालित है। वैश्वीकरण के आने से संसार की विभिन्न संस्कृतियों के आधारभूत नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक मूल्य नष्ट होते जा रहे है। सभी देशों में विभिन्न प्रकार के समाजों की अलग-अलग संस्कृतियाँ थी। उन समाजों में खान-पान, रहन-सहन, नाच-गाना इत्यादि में बहुत विविधताएँ थी जिनकी अपनी-अपनी विशेषताएँ और अलग-अलग पहचान थीं। इस वैश्विक बाजारवाद ने इनकी पहचान को छीन लिया है। पूरा विश्व जो कभी बहुसांस्कृतिक था,अब बहुत तेजी से सांस्कृतिक एकरूपता की तरफ भाग रहा है। अब एक ही तरह की फिल्में एक ही तरह के टी.वी. सीरियल, एक से नाच गाने, फास्ट फूड, मॉल, मल्टीप्लेक्स, कोक, पेप्सी, नेसकेफे दिखाई देने लगे हैं।

वैश्वीकरण के दौर में बाजारवाद तमाम संस्कृतियों को विकृत कर रहा है। वैश्वीकरण ने भारतीय समाज और संस्कृति को भी काफ़ी प्रभावित किया है। भारत, जो कभी गाँवों में बसता था आज शहरीकरण को विकास का पर्याय मान उपभोक्तावादी समाज में परिवर्तित हो रहा है। इस शहरीकरण की प्रक्रिया में गाँव नगर, नगर महानगरों में परिवर्तित हो रहे हैं जिनमें बड़ी-बड़ी बहुमंजिला इमारतें, शॉपिंग कॉम्पलेक्स, मल्टीप्लेक्स, महँगी शराब, महँगी गाड़ियाँ, ब्यूटी पार्लर, सैलून, जिम, क्लब, फार्म हाउस, होटल रेस्टोरेन्ट, बैंकट हॉल तथा तमाम मौज मस्ती के साधन मौजूद है। यह बाजारवाद समाज में संसाधनों को जोड़ने पर जोर देता है। ये वैश्वीकरण का ही प्रभाव है कि शहरों में एक नए वर्ग का उदय हुआ है जिसे हम "शहरी गरीब" कह सकते हैं ।

गांवों में संसाधनों के अभाव में लोगों ने शहरों का रुख किया मगर शहरों में भी संसाधन सीमित और पहले से ज्यादा लोग होने की वजह से उन लोगों को यहां पर भी ज्यादा आय नहीं मिल पाई जिस वजह से इन्हें यहां भी गरीबी और अभाव में ही जीवनयापन करना पड़ रहा है। ग्रामीण इलाकों से आए ये लोग ही शहरों में "शहरी गरीब" वर्ग के तौर पर पहचाने जाते हैं।

ऐसे भौतिकवादी समाज में जो भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक-नैतिक गुण और संस्कार जैसे सत्य, अहिंसा, भाईचारा, ईमानदारी, नैतिकता, संवेदनशीलता, सहिष्णुता, क्षमा, सदाचार, शील, संयम, उदारता, नेकी, इत्यादि समाप्त होते जा रहे हैं।

भूमंडलीकरण ने समाज और संस्कृति के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने लालच को जन्म दिया है। इस लालची प्रवृत्ति ने सुविधाभोगी मनुष्य वर्ग को अपने नियंत्रण में कर लिया है। यह वर्ग तकनीकी विकास के नाम पर अराजक और व्यक्ति केन्द्रित होता जा रहा है। सामूहिकता और सामाजिकता को छोड़कर व्यक्तिगत और असामाजिक होता जा रहा है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में उपभोक्ता संस्कृति ने अपने पाँव पसार लिए हैं। भारतीय समाज भी अपने पौराणिक सामाजिक संस्कारों से कट रहा है और पाश्चात्य भौतिकवादी मूल्यों को अपना रहा है। व्यक्ति भौतिक संसाधनों का दास बना रहना चाहता है। त्याग, समर्पण, प्रेम जैसे भावों को छोड़कर लोग ऐशो आराम के साधनों को जोड़ने की अंधी दौड़ में शामिल हो गए हैं। भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा भी टूटने लगी है। एकल परिवार प्रणाली और उससे भी बढ़कर 'सिंगल' यानि एकल प्रणाली महानगरों में जोर पकड़ने लगी है। क्योंकि यहाँ जिम्मेदारी से मुक्ति है। विवाह जैसी संस्था को भी समाज में चुनौती दी जा रही है। 'लिव इन रिलेशनशिप' बढ़ रहा है वहीं तलाकों की संख्या भी समाज में बढ़ती जा रही है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में सब कुछ भोग लेने की प्रवृत्ति ने स्त्री देह को भी नहीं छोड़ा है। समाज के आरम्भ से ही स्त्री को मात्र भोग्या माना गया है। परन्तु वर्तमान में उसकी स्थिति और दयनीय हो गई है। मीडिया और विज्ञापनों ने स्त्री देह को सिर्फ उपभोग की वस्तु माना है। पैसे का लालच देकर, रोजगार के नाम पर स्त्रियों के साथ बलात्कार जैसे कुकर्म दिनोंदिन बढ़ते जा रहे है। सभ्य समाज में स्त्रियों के साथ ऐसे कुकृत्य होने ही नहीं चाहिए जबकि इनकी संख्या में बढ़ोतरी संकेत कर रही है कि ऐसा समाज विकास की तरफ ना जाकर पतन की ओर बढ़ रहा है। निःसंदेह वह दिन दूर नहीं जब यह उपभोक्तावादी संस्कृति वाला समाज एक दिन अंधी खाई में गिरेगा।

'भूमंडलीकरण और समाज' लेख में श्री रामकुमार साह जी लिखते हैं कि आज सूचना तकनीकी , मोबाइल, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ईमेल तथा अन्य संसाधनों के तीव्र विकास के कारण विश्व की सामाजिक संरचना पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा है। संवाद की प्रक्रिया को एक नई गति मिली है। एक देश से दूसरे देशों के बीच आना-जाना और आदान-प्रदान की प्रक्रिया भी बढ़ी है। समय और स्थान की सीमा सिमटती जा रही है। इसने कृषि व्यवस्था को नकारात्मक रूपों में प्रभावित किया है। कुटीर उद्योगों को लगभग समाप्त कर दिया है औद्योगिकरण के सामने कृषि अर्थव्यवस्था घाटे का सौदा बनकर रह गया है। विकास परिदृश्य असमानताओं के रूप में परिलक्षित हो रहा है। जहाँ विश्व में एक ओर अरबपतियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है, वहीं दूसरी ओर भूखे और बेरोजगार लोगों की संख्या भी बहुत बड़ी है। समाज में मानव विकास में भी असमानताएँ है। एक तरफ शिक्षित और तकनीकी ज्ञान वाले लोग है तो दूसरी तरफ अधिकतर लोग अशिक्षित है, जो कम्प्यूटर और इन्टरनेट से बिलकुल दूर है। अतः भूमंडलीकरण की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ जाते है। जिससे समाज में असमंजस की स्थिति पैदा हो गई है। उच्च विकासदर और खुली वैश्विक नीति के कारण गाँवों और नगरों में भी असमानता बहुत बढ़ी है। हम भारत को ही देखें तो आजादी के पूर्व शहरी आबादी केवल 10.1 प्रतिशत ही थी। किन्तु आजादी के बाद से आधुनिकीकरण और विकास की इस दौड़ में शहरीकरण में तेजी आयी है। आज गाँवों की आबादी की जहाँ विकास दर डेढ़ प्रतिशत है वहीं शहरी आबादी की दर 4 प्रतिशत है। साथ ही पूँजीवादी नीतियों के परिणामस्वरूप गांवों और शहरों की असमानता और भी बढ़ गयी है। भारत में तो एक विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिसमें निर्धन और भी अधिक निर्धन हो रहे है, लेकिन धनवान सुनिश्चित तौर पर और भी अधिक धनवान होते जा रहे हैं। फलस्वरूप निर्धनों और धनवानों के बीच खाई चौड़ी होती जा रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर में सब कुछ तेजी से बदल रहा है। सब कुछ फास्ट हो रहा है। फास्ट फूड, फास्ट म्यूजिक, फास्ट पैंकिंग आदि। फैशन बहुत जल्दी बदल रहा है। इसी भूमंडलीकरण ने फैशन डिजाइनिंग और फैशन शो जैसे व्यवसायों को जन्म दिया। यह उपभोक्तवादी संस्कृति भ्रम पैदा करती है। इसीलिए गांधीवाद का अहिंसा सिद्धांत और मार्क्सवाद का श्रम सिद्धांत इस उपभोक्तवादी समाज को रास नहीं आता। भूमंडलीकरण के दौर में 'धर्म' अब आस्था और विश्वास की बजाय पैसा कमाने का साधन बन गए हैं। धर्म के नाम पर पैसा वसूली की जाती है। धर्म का भी राजनीतिकरण हो रहा है।

वैश्विकरण के युग में भारत सबसे बड़ा उपभोक्ता देश है। भारत धीरे-धीरे एक बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के कारण हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का विदेशों में खूब प्रचार-प्रसार हो रहा है। हिन्दी सिनेमा के माध्यम से विदेशों में भारतीय समाज और संस्कृति का भी विकास हुआ है। भारतीय योग प्रणाली, आयुर्वेदिक चिकित्सा पूरे संसार में अपनाई जा रही है। कुंभ के मेलों में विदेशियों की अच्छी खासी भीड़ देखी जा सकती है। भारत सरकार और सभी भारतीय लोग एकमत होकर भारतीय सभ्यता और

संस्कृति के मूल्यों को पहचानकर जोर-शोर से इसके प्रचार-प्रसार में जुट जाएँ तो वह दिन दूर नहीं जब पूरा विश्व भारत को फिर से विश्वगुरु मान लेगा। डॉ. पंडित बव्ने जी के अनुसार भूमंडलीकरण का संबंध पूँजी, विज्ञान, विचार और बौद्धिक तकनीक से है। भूमंडलीकरण संस्कृति ने पृथ्वी को बाजार में परिवर्तित कर दिया है। डॉ. नरसिंह श्रीवास्तव के अनुसार "उसके पास पिज्जा है, रोटी है, डिस्को डांस है, शोरबा है, बोटी है, फैशन परेड है। पंचतारा होटलों में स्वर्ण-तश्तरियों पर रोज परोसी जाती दूसरे की बेटी है-

रोशनी-चमकीले धागों से बुना हुआ मनमोहक महाजाल है
जिसमें फंसी छोटी-बड़ी मछलियाँ मासूम तड़पती बेहाल है,
जान फेंकने वाला दूर नहीं बैठा अदृश्य कस रहा जाल है।"

बाजार आज की कविता का प्रमुख बीज बन गया है। हिंदी कवियों और आलोचकों ने भूमंडलीकरण और बाजारवाद के परिणामस्वरूप निर्माण हो रही भयावहता पर बार-बार चिंता प्रकट की है। वर्तमान के प्रमुख कवियों- बद्रीनारायण, विनोद व्यास, एकांत श्रीवास्तव, नवल शुक्ला, संजय चतुर्वेदी आदि का मानवीय मूल्यों और आस्थाओं में विश्वास है।

भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के प्रभाव और परिणामों का आभास हिंदी कविता में 80 के दशक से ही होना आरंभ हो गया था। आज का सर्वाधिक चर्चित माध्यम इंटरनेट के रूप में विश्व का बाजार घर में भी दाखिल हो गया है। कर्ज देते समय आगे-पीछे करने वाली बैंक कर्ज वसूली के लिए कोई भी तरीका अपना सकती है। कई बैकों में कर्जा वसूलने के लिए गुंडों की फौज रखी है तो किसी ने हिजड़ों पर एक काम सौंपा है..
"हिजड़ों की फौज
ढोलक की थाप पर
कर्जा वसूलने के लिए
दरवाजे पर तालियाँ पीटने लगी
ऋणकों की बची-खुची
अस्मत चौराहे पर टँगने लगी।"

(भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में भाषा और साहित्य-डॉ. माधव सोनटक्के, डॉ. अंबादास देखमुख, पृष्ठ-91)

ओम शर्मा के अनुसार, "साहित्य अपने समग्र प्रभाव के कारण अपनी महत्ता पाता है जबकि मीडिया की तमाम अहमियत एक खास अंश में व्याप्त रह सकती है। चंद लोगों का रोज-रोज शराब पीना, रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर नाचना-गाना और देर रात तक फैशन, फिल्म या क्रिकेट के बारे में नुक्ताचीनी करते हुए हर रोज उसी तरह से मिलने-जुलने की संस्कृति (पेज थ्री) की संज्ञा मीडिया में ही दी जा सकती है। साहित्य और कुछ करे न करे, प्रश्न और पड़ताल करने का सलीका दे ही देता है, हालांकि वास्तविकता से उसके भीतर भी कई सलवटें पड़ी मिल जाएँगी।" (सं. रतनकुमार पाण्डेय-मीडिया विशेषांक, 2006 'अनभै', पृष्ठ-72)

साहित्यकार सुरेश शर्मा कहते हैं "हमारे अखबार अब वही भाषा छापने को मजबूर हैं जो हमारे विज्ञापनदाता चाहते हैं क्योंकि उन्हीं के पैसे से सारा खेल हो रहा है। हमें कहा जाता है कि भूल जाइए अज्ञेय को, नागार्जुन को या रघुवीर सहाय को। वही भाषा लिखिए जो हम कह रहे हैं। आज किसी अखबार को सामाजिक सरोकार से कोई मतलब नहीं है।... आज अखबार नग्न तस्वीर छापने से भी कोई परहेज नहीं कर रहे हैं।...पूरा परिवार उन्हें साथ-साथ देखता है। आज देश का शायद ही कोई अखबार हो जो साहित्य या... नाट्य समीक्षा नियमित रूप से छापता हो।"

डॉ. बृजबाला सिंह इस विषय पर अपने लेख वैश्विक परिदृश्य में हिंदी कविता में बताती हैं कि आजकल जो कविताएँ लिखी जा रही हैं। उनका परिदृश्य विशाल है। पहले से बहुत ज्यादा, कारण अब लोगों अर्थात् रचनाकारों के पास तमाम सूचनाएँ हैं। वह गाँव में, कस्बे में, नगर तथा महानगर में कहीं भी रहता हो जगत संवेदनाओं से संपृक्त है। उसमें जो वैश्विक संवेदना अभिव्यक्त हो रही है वह एक तरफ समस्त मानवता से जुड़ी है तो दूसरी तरफ

साम्राज्यवादी वित्तीय पूँजी से त्रस्त भारतीय जनता की सर्जनात्मक चेतना की बेचैनी को व्यक्त करने की तड़प से। आज की हिंदी कविता जो कुछ मानवीय है उसे निगल जाने की भूमंडलीकरण की सुरसा की हवस से बचाने के लिए रचनात्मक अभियान आवश्यक है। यह सुखद है कि हमारे कवि इसमें संलग्न हैं। हिन्दी कविता में बहुत कुछ लिखा जा रहा है। किसी को बहुत कुछ छूटता भी दिखाई दे सकता है। कविता की अपनी सीमा होती है। शक्तियों की सच्चाई एवं मोहभंग आज की कविता में मुखर है। अरुण कमल, की पुतलियों का संसार अथाह है। उन पर इतनी छायाएँ हैं कि उनका समूचा चित्रण कठिन है। एकान्त श्रीवास्तव, अनामिका, कात्यायनी जैसे तमाम रचनाकार सशक्त सामाजिकता की कविताएं रच रहे हैं। अरुण कमल की एक कविता सम्पूर्णतः प्रस्तुत है जिसका शीर्षक है 'खबर'। खबरों में वह सब कुछ सुनाया-पढ़ाया जाता है जो आश्चर्यजनक रूप से चौंकाने वाला होता है, यह कविता सच्चाई का बयान कितना और कितने रूपों में करती हैं...

अखबारों में खबर थी
कैलिफोर्निया की एक कुतिया ने तेरह बच्चे
एक साथ जने।
अखबारों में खबर थी।
युवराज ने कंगालों को कंबल बांटे।
अखबारों में खबर थी।
प्याज बड़ा गुणकारी होता है।
अखबारों में खबर थी
राजनेता ने दाढ़ी मुड़ाई।
एक खबर जो कहीं नहीं थी
किश्ता गौड़ को फांसी हो गयी
एक खबर जो कहीं नहीं थी
भूमैया को फांसी हो गयी।"
(अपनी केवल धार, अरुण कमल, पृष्ठ-15)

भूमण्डलीकरण के प्रभाव से लिखी गई भगवत रावत की कविताएँ भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। आजकल गोल-गोल बातें की जाती हैं। सबसे मित्रता का स्वांग किया जाता है। कोई किसी से उलझता नही। सब एक-दूसरे के लिए चिंतित नहीं व्यथित दिखाई देते हैं। कोई अब असहमति नहीं दिखाता, असुविधाजनक प्रश्न नहीं करता। ऐसे परिवेश में रावत बदलते मौसम का मिजाज लिखते हैं-

जब से भूमण्डल नहीं रहा भौगोलिक
चढ़ गया है भूमण्डलीकरण का बुखार
जब से गायब होना शुरू हुई उदारता
फैला प्लेग की तरह
उदारतावाद
जब से उजड़ गये गाँवों, कस्बों और शहरों के
खुले मैदानों के बाजार
घर-घर में घुस गया नकाबपोश
बाजारवाद।"
(देश एक राग है, भगवत रावत, पृष्ठ-27)

संजय सिंह बाघेल अपने लेख भूमंडलीकरण के दौर में भाषा की राजनीति और मीडिया में लिखते हैं कि भूमंडलीकरण के दौर में इंटरनेट, मीडिया और सोशल मीडिया के विस्तार ने न सिर्फ हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को वैश्विक स्तर पर दर्जा दिलाया है अपितु इन भाषाओं को एक नई ऊँचाई और पहचान दिलायी है जिसमें हिंदी सिनेमा का विशेष योगदान रहा है। भाषा के साथ-साथ इन माध्यमों के द्वारा संस्कृति का भी विकास हुआ है। नहीं तो क्या वजह रही है कि आज से चालीस साल पहले प्रयाग में जो कुंभ मेला लगता था, वहां पहुंचने वालों में

अधिकतर भारतीय होते थे। लेकिन आज देखें तो भूमंडलीकरण, मीडिया और तकनीक के द्वारा 'कुंभ' का प्रचार-प्रसार विदेशों तक हुआ है। कुंभ में इस बार चालीस लाख लोग इकट्ठे हुए। मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि इनमें सात से दस लाख लोग विदेशी थे। तो यह भूमंडलीकरण के द्वारा हमारी संस्कृति और अस्मिता का विस्तार है या नहीं? हमें ध्यान देना हागा कि 'कुंभ' आस्था के साथ-ही-साथ हमारी संस्कृति का भी महत्वपूर्ण अंग है। संस्कृति के साथ-ही-साथ मीडिया ने, भूमंडलीकरण के माध्यम से हमारे साहित्य को भी विस्तार दिया है। हिंदी में विद्यार्थी जानते होंगे गोरख पाण्डेय, जो जे.एन.यू. के छात्र रहे हैं और एक कवि भी, उनकी एक कविता है 'हिल्लोरा झकझोर दुनिया' जिसको यूरोप का एक बहुत बड़ा बैंड 'इंडियन ओसन ग्रुप' ने अपने एलबम का हिस्सा बनाया है। दूसरा कबीर को पद जो पहले कहीं-न-कहीं हमारे अपने देश तक तथा कुछ विश्वविद्यालय तक ही सीमित थे, वे आज भूमंडलीकरण, तकनीकी तथा मीडिया के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहँच चुके हैं। यदि आप आज इंटरनेट पर सर्च करेंगे तो आपको कबीर के पूरे दोहे मिल जाएँगे। जिसे आप पढ़ सकते हैं, सुन सकते हैं, इतना ही नहीं, मैडोना जैसी पॉप सिंगर कबीर के पद को गा रही है।

कुल मिलाकर कह सकते है कि भूमंडलीकरण के युग में भारतीय भाषाओं की संकुचित सीमाएँ टूटती हुई नजर आ रही है और इसके एक वैश्विक फलक मिलता हुआ दिखाई दे रहा है। जो हिंदी और इसके जैसी दूसरी अन्य भाषाओं के लिए शुभ संकेत है। हिंदी आज संसार में सबसे अधिक बोलने वाली भाषा है। इतना ही नहीं, नवीन टेक्नॉलॉजी ने हमारी भारतीय संस्कृति और अस्मिता के प्रश्नों को भी वैश्विक स्तर पर एक नई पहचान दिलाने में महती भूमिका निभाई है। यही वजह है कि आज पूरी दुनिया सामाजिक और आध्यात्मिक विकास की दिशा में भारत की ओर ही देखता है। यही वजह है कि हमारे देश की प्राचीन विद्या 'योग' को वैश्विक स्तर पर मान्यता मिल गई है। इतना ही नहीं, होली और दिवाली सिर्फ भारतीय पर्व न होकर के पूरी दुनिया में अपनी एक नई पहचान बना रहे हैं। ये सब उदाहरण दर्शाते हैं कि इससे भारतीय भाषा और संस्कृति का विस्तार होगा और इसको एक नई दिशा मिलेगी।

संदर्भ-ग्रंथ सूची:

1. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक प्रस्थान बिंदु (उपभोक्ता संस्कृति के चिह्न), आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण-2000
2. प्रभा खेतान, बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-1990
3. डॉ. मुकेश अग्रवाल, भाषा साहित्य और संस्कृति, के एल पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, तृतीय संस्करण 2007
4. कुमुद शर्मा, भूमंडलीकरण की चुनौतियां, ग्रंथ अकादमी प्रकाशन, दरियागंज, संस्करण 2003
5. सच्चिदानंद सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, संस्करण-2003
6. सुधीश पचौरी, भूमंडलीकरण, बाजार और हिन्दी, अनुराग प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली
7. संपादक रामशरण जोशी, मीडिया और बाजारवाद, राधा कृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली, संस्करण 2002
8. डॉ. विनोद कुमार सिन्हा, राष्ट्रभाषा हिन्दी कुछ विचार, संमार्ग प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली, संस्करण 2001

9. सुरेश पंडित, भूमंडलीकरण के दौर में समाज और संस्कृति, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010

10. संपादक ज्ञानतोष कुमार झा, भाषा की राजनीति और राष्ट्रीय अस्मिता, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली, संस्करण- 2014

11. सुषमा वेदी, हिन्दी भाषा का भूमंडलीकरण, सामयिक बुक्स, दरियागंज दिल्ली, संस्करण- 2012